Volume-3, No. I, Feb-2016, pp. 96-98

स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में उपयोगिता

श्री पवन त्रिवेदी, प्रधानाचार्य
जनता इन्टर कालिज बुलन्दशहर उ.प्र. भारत।

सार
परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। यही परिवर्तन विकास का भी सूचक है जो राष्ट्रीय विकास के आयामों की दिशा का निर्धारण करता है। राष्ट्रीय विकास की श्रृंखला में 'शिक्षा' एक ऐसा महत्वपूर्ण आयाम है, जिसका मानव निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान है। विज्ञान, सूचना और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण शैक्षिक परिदृश्य में जो परिवर्तन हुआ है उसका प्रभाव मानव विकास पर भी पड़ा है। परिणामस्वरूप भौतिकवादी मानसिकता के कारण मूल्यविहीनता की स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसके कारण आज शैक्षिक जगत में मूल्यों के संकट की दस्तक सुनाई देती नज़र आती है।

मुख्य शब्द–सर्वांगीण विकास, पूर्णत्व की अभिव्यक्ति, अनंत शक्तियाँ विद्यमान, आविष्कार, भौतिकवादी परिदृश्य

हमारे भारतीय महापुरुषों, चिन्तकों एवं विचारकों ने मूल्यों से समन्वित जिस भारतीय शिक्षा की परिकल्पना की थी वह आज एक प्रश्नचिन्ह बनकर रह गई है। 'बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास' की संकल्पना आज सिर्फ सरकारी प्रतिवेदनों के दस्तावेजों और पुस्तकों तक ही सीमित दिखाई देती है। वर्तमान समय में सरकारी आँकड़ों ने शिक्षा के तीव्र गति के साथ बढ़ते हुए विस्तार को भले ही प्रदर्शित कर दिया हो परन्तु शिक्षा में गुणात्मकता के अभाव की स्थिति आज भी बनी हुई है। इसका प्रमुख कारण है शैक्षिक विकास के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यविहीनता की स्थिति का व्याप्त होना, जिसके कारण वे सभी नैतिक मापदण्ड लुप्त होते नजर आ रहे है जिनके कारण शिक्षा का प्रत्येक स्तर मानवीय मूल्यों के विकास एवं गुणात्मकता की दृष्टि से प्रभावित हुआ है।

अतः आज उन महापुरुषों के शैक्षिक चिन्तन को पुनः स्मरण कर, शिक्षा के क्षेत्र में उसकी प्रासंगिकता को समझने की आवश्यकता है, जिससे श्रेष्ठ मानव निर्माण की संकल्पना को सार्थक रूप दिया जा सके। स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही युग चिन्तकों में से एक है जिन्होंने शिक्षा द्वारा मानव निर्माण की संकल्पना को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। अतः वर्तमान शैक्षिक जगत में स्वामी जी के शैक्षिक विचारों को साकार रूप देकर शिक्षा के क्षेत्र में परिमार्जन की आवश्यकता है।

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा की व्यापक परिकल्पना की है, उनके अनुसार–मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। स्वामी जी द्वारा दी गई 'शिक्षा' की इस परिभाषा में उनका शैक्षिक दर्शन समाहित है जो कि मूलतः अद्वैत वेदान्त से अनुप्राणित है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरीय अंश विद्यमान है। प्रत्येक प्राणी दैवीय है। इस पृथ्वी पर ईश्वर जीव रूप में ही अस्तित्वमान है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का कोई दूसरा रूप नहीं है। जीवन का लक्ष्य इस दिव्यता या ब्रह्म भाव का प्रकाशन है। शिक्षा और कर्म इस दिव्यता या पूर्णत्व की अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन है।

मानव के भीतर यदि ज्ञान तथा अनंत शक्तियों का स्रोत विद्यमान नहीं होता, तो हजारों प्रकार से प्रयास करके भी वह कभी ज्ञानी तथा शक्तिमान नहीं हो पाता। बाहरी पदार्थ तथा बाहरी उपाय उसके अन्तर में किसी भी प्रकार ज्ञान तथा शक्ति का प्रवेश नहीं करा सकते, बल्कि उस ज्ञान तथा शक्ति की अभिव्यक्ति में जो बाधाएँ हैं, केवल उन्हीं को दूर करने में सहायता भर कर सकते हैं। अतः उन बाधाओं को दूर करने के विशिष्ट उपायों को ही 'शिक्षा' कहा जाना चाहिए।

बालक इस संसार में जब जन्म लेता है तो उसमें अनंत शक्तियाँ विद्यमान होती है। अतः ज्ञान बालक में अन्तर्निहित है। कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अन्दर ही है। बालक जो भी सीखता है, वह वास्तव में 'आविष्कार करना' ही है। 'आविष्कार' से अभिप्राय है–मनुष्य जब अपने अन्दर विद्यमान अनन्त शक्तियों के ऊपर से ढके आवरण को हटा लेता है। मनोवैज्ञानिक रूप से यह बालक के व्यवहार की परिमार्जन की क्रिया है। शिक्षक ज्ञान के अन्वेषण में उद्दीपन का कार्य करता है, छात्र को प्रेरणा प्रदान करता है, शैक्षिक वातावरण का सृजन करता है, ज्ञानार्जन में आने वाली बाधाओं का निवारण करता है। उदाहरण के लिए जिस प्रकार किसी वृक्ष या पौधे के लघुबीज में स्वतः विकास के तत्व अन्तर्निहित होते हैं, उसी प्रकार बालक में भी स्वतः विकास की अपरमित क्षमताएँ विद्यमान होती है। आवश्यकता है–उनके प्रस्फुटन की, पल्लवन की और पोषण की। जिस प्रकार कृषक पौधे या वृक्ष को तैयार करने के लिए मात्र उचित भूमि तैयार कर बीज़ारोपण करता है साथ ही उचित उर्वरक, जल, वायु, प्रकाश आदि की व्यवस्था करता है और पौधे की सुरक्षा के

लिए उसके चारों ओर सुरक्षा का घेरा तैयार करता है तब पौधा स्वयं अपने अन्तर्निहित विकास तत्व से विकसित होता है, उसी प्रकार यही कार्य बालक की शिक्षा में शिक्षक का है। बालक में विद्यमान अन्तर्निहित क्षमताओं के अन्वेषण द्वारा उसके सीखने की प्रक्रिया सहज स्वाभाविक ढंग से बिना किसी दबाव के होनी चाहिए। शिक्षक के साथ–साथ माता–पिता अथवा अभिभावकों का भी बालकों के स्वाभाविक विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। उनके सहयोग के बिना यह कार्य कठिन है। क्योंकि बालक की सीखने की प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है और उसके प्रथम गुरु उसके माता–पिता ही होते है। अतः बालक के स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया परिवार से ही प्रारम्भ होती है। उसमें अन्तर्निहित क्षमताओं का प्रस्फुटन उसकी विभिन्न गतिविधियों में शनैः शनैः प्रकट होने लगता है। यही से यदि उसे विकास के अनुकूल अवसर परिवार में सुलभ हो जाते हैं तो शिक्षक को भी उसके सीखने की क्रिया में आने वाली बाधाओं को दूर करने में सहायता मिलती है। अतः शिक्षक वह अभिप्रेरककर्त्ता है जो बालक में अन्तर्निहित क्षमता का उद्घाटन कर उसके विकास की दिशा का निर्धारण करता है तथा उसके गुणात्मक उन्नयन के लिए सतत मार्गदर्शन का कार्य करता है।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय अवधारणा को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शिक्षा जीवन का निर्माण करने वाली, मनुष्य बनाने वाली, चरित्र गठन करने वाली तथा विचारों को आत्मसात् कर जीवनोपयोगी बनाने वाली होनी चाहिए। 'नव्य' वेदान्त में स्वामीजी ने लिखा है कि ''शिक्षा द्वारा मनुष्य का निर्माण किया जाता है। समस्त अध्ययनों का अंतिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है। जिस अध्ययन द्वारा मनुष्य की संकल्पशक्ति का प्रवाह संयमित होकर प्रभावोत्पादक बन सके, उसी का नाम शिक्षा है।''

आज ऐसी ही शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा जीवन में मानवीय मूल्यों के विकास के साथ मानव का चरित्र निर्माण किया जा सके। वह अपने जीवन के लक्ष्य का निर्धारण कर संकल्पशक्ति के साथ उसे पूरा करते हुए आत्मनिर्भर बन सके। इसके लिए आवश्यकता है मन की एकाग्रता की। 'मन की एकाग्रता' अभ्यास से आती है। स्वामीजी के अनुसार शिक्षा का सार मन की एकाग्रता प्राप्त करना है, तथ्यों का संकलन नहीं। शिक्षा का मूल तत्व ज्ञान को आत्मसात् कर जीवन में प्रयोग करना है। एकाग्रता की शक्ति जितनी अधिक होगी, ज्ञान की प्राप्ति भी उतनी ही अधिक होगी। एकाग्रता ही वह शक्ति है जो मन के प्रवाह को संयमित कर मानव के अंदर के ज्ञान रूपी प्रकाश को उद्घाटित करती है।

स्वामीजी मानसिक एकग्रता के लिए छात्र जीवन में ब्रह्मचर्य जीवन का पालन अनिवार्य मानते हैं। ब्रह्मचर्य से अभिप्राय है सदैव और सभी अवस्थाओं में मन, वचन और कर्म से पवित्र रहना, यही ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य से बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है, मन तथा इन्द्रियाँ नियंत्रित होती है, स्मृति शक्ति का विकास होता है, प्रबल कार्यशक्ति की अभिवृद्धि होती है। मानसिक एकाग्रता बढ़ती है। अतः आज इसी चिंतन को जीवन में पुनः आत्मसात् करने की आवश्यकता है तभी विद्यार्थी जीवन के अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

वर्तमान भौतिकवादी परिदृश्य पर दृष्टिपात करे तो आज छात्रों में एकाग्रता का अभाव देखने को मिलता है। एक समय में एकाग्रचित्त होकर कार्य करने की प्रवृत्ति अब विद्यार्थियों में नहीं पायी जाती, बल्कि एक साथ कई क्रियाओं को करके शीघ्र फल प्राप्त करने की जो आकांक्षा उनमें देखने को मिलती है वह उनके व्यक्तित्व निर्माण और ज्ञानार्जन दोनों में बाधक है। यही जीवन में उनकी असफलता का सबसे बड़ा कारण है। युवाओं के पास डिग्री तो है लेकिन अपने विषय में उनमें पूर्ण दक्षता का अभाव है, जिसके कारण वह डिग्री लेकर बेरोजगार हैं अथवा सिफारिश से यदि कहीं नौकरी भी मिल गयी तो वह अपने कार्य के साथ पूर्णतः न्याय नहीं कर पाते। अतः वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए स्वामीजी के विचार इस दिशा में अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। यदि छात्र जीवन में इनको आत्मसात् किया जाये तो वे अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे और उनमें विद्यमान अंतर्निहित क्षमता का सार्थक दिशा में विकास हो सकेगा।

स्वामीजी के शिक्षा विषयक विविध चिंतन–पूर्ण मानव के निर्माण हेतु व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की अवधारणा, जीवन के निर्माण हेतु व्यापक पाठक्रम, अंतर्निहित शक्तियों के प्रकटीकरण एवं ज्ञानार्जन हेतु मानसिक एकाग्रता का विकास, अधिगम की प्रक्रिया में बालक का स्वाभाविक विकास एवं उनकी सहभागिता, अधिगम प्रक्रिया में बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति, भयमुक्त शिक्षा, स्वानुशासन का विकास, शिक्षा में प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रयोग, शिक्षक का उच्चतम आदर्श, पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर की उपलब्धता, समाज के निर्धन, अवंचित और पिछड़े वर्ग की शिक्षा के प्रति विशेष संवदेनशीलता राष्ट्र के पुनर्निर्माण एवं शैक्षिक क्षेत्र में परिमार्जन की दृष्टि से आज भी शिक्षाविदों एवं

शैक्षिक नीति निर्धारकों के चिंतन का विषय बने हुए हैं।

निष्कर्ष–महात्मा गाँधी की बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वोत्तम विकास तथा पेस्टालॉजी की मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के स्वाभाविक, सर्वांगपूर्ण और प्रगतिशील विकास विषयक शिक्षा की अवधारणाएँ स्वामीजी की मानव की पूर्णता को अभिव्यक्त करने वाली शिक्षा की अवधारणा से प्रायः साम्यता रखती हैं। अतः आज के चुनौतीपूर्ण परिदृश्य को मूल्यपरक बनाने की दृष्टि से स्वामीजी के शैक्षिक विचार न केवल प्रासंगिक हैं बल्कि इस दिशा में शिक्षाविदों एवं नीति निर्धारकों के वैचारिक मंथन का भी विषय हैं, जिनके अनुशीलन द्वारा वर्तमान समय में शिक्षा के माध्यम से मानव निर्माण की संकल्पना की सार्थकता को मूर्त रूप दिया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. दि मेसेज ऑफ विवेकानन्द (11वां संस्करण, अगस्त 2002), कोलकाता : अद्वैत आश्रम–5, पृ.5
2. स्वामी विदेहात्मानन्द, (प्रथम संस्करण, 2009), स्वामी विवेकानन्द : शिक्षा का आदर्श, नागपुर : रामकृष्ण मठ, पृ.1
3. रामचन्द्रन एवं रामकुमार, बसंत (2005), एजूकेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ.112
4. कुमार, गिरिजेश व कुमार, अनूप (2001), वर्तमान शैक्षिक परिवेश में स्वामी विवेकानन्द की शैक्षिक परिकल्पना–एक चिंतन, भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष–20, अंक–2, पृ.20, अक्टूबर 2001, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्।
5. कुमार, भवेश (2010) स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता, भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष–30, अंक–3, पृ.47, जनवरी 2010, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्।